एक समय की बात

ओमा शर्मा

एक समय की बात

बैंक के कार्यालय में यह मेरी चौथी दस्तक थी| मेरे क्रेडिट कार्ड पर किसी ने चौंतीस हजार के कपडे, सड़सठ हजार के गहने और अट्ठाईस हजार के हवाई टिकट खरीद

https://www.hindiadda.com/ek-samay-ki-baat/

डाले थे जबकि वह मासूम आयताकार औजार मजे से मेरे बटुए के कोने में सोया पड़ा था। जब उधार खाता एक लाख को पार कर गया तो बैंक के सिस्टम ने मेरे मोबाइल पर इस बाबत संदेश दिया। मेरी तो सिट्टी-पट्टी गुम हो गई। मैं बैंक को सूचित करने और कार्रवाई करने के लिए दौड़ा। वह एक निजी क्षेत्र का बैंक था। मॉड्यूलर डैस्क पर तैनात युवा कर्मी ने खासी देर तक कंप्यूटर पर माथा-पच्ची की, इधर-उधर फोन घुमाए, मुझसे तमाम दरयाफ्त की, इंतजार करवाया मगर घंटे भरे की कवायद का नतीजा रहा तो यही कि मेरे क्रेडिट कार्ड को फ्रीज कर दिया गया था। किस मरदूद ने यह किया, कहाँ से मेरे कार्ड का नंबर और पिन-पासवर्ड लिए गए इसके बारे में उसने असहायता से मुँह बिचका दिया।

इस दरम्यान हमने पुलिस में एक प्राथमिकी दर्ज करवा दी जिसका पूरा किस्सा-कोताह अलग हैं। बैंक में मामले की पूछताछ करते हुए हफ्ता बीत गया था और कहीं कुछ होता नहीं दिख रहा था। तब मैंने रावल को पकड़ा था। एक तो इसलिए कि वह ज्यादा दुनियादार है, खुद बैंक में काम करने के कारण मामले की बारीकियों को बेहतर जानता-समझता है और सबसे बड़ी बात ये कि व्यवस्था के पूरी तरह सड़-गल जाने को लेकर वह मेरी तरह बात-बेबात लाचारी में उफन नहीं पड़ता है। असल काम तो आज भी आगे नहीं खिसका था मगर बैंक आना दूसरे ढंग से कामयाब लग रहा था। अब उस कुर्सी पर स्वाति खांडेकर नाम की एक आकर्षक अधेड़ आ गई थी जिसे देखकर रावल की उम्मीदें आदतन कुनमुनाने लगी थीं। उनकी बातों से मुझे पता चला कि होना तो नहीं चाहिए था मगर शायद हुआ यह हो कि किसी ने कंप्यूटर की मदद से मेरे क्रेडिट कार्ड की क्लोनिंग कर ली हो। और रही बात उसके साथ नत्थी होने वाले पासवर्ड की तो हैकिंग के इस जमाने में यह कोई मसला नहीं रह गया है।

जो भी हो, हमने तय कर लिया था कि बैंक के जरिए जो हमारी जेब काटी जा रही थी उसमें हमारा कोई कसूर नहीं था इसलिए चाहे कोर्ट-कचहरी हो जाए **(**अपने बैंक के पैनल के कुछ वकीलों से मुलाकाती परिचय इस गुमान की जड़ थी**),** बैंक को एक पैसा नहीं देंगे हालाँकि निजी क्षेत्र के बैंकों के वसूली विभाग की गुंडई तत्वों की ली जाने वाली मदद की हमें अखबारी भनक थी। मामले को सलटाने में थोड़ी देर लगेगी लेकिन स्वाति जैसी गुदाज और इसी कारण समझदार स्त्री से लगातार संपर्क के चलते हमारी परेशानी में कुछ मिठास आ घुली थी। रावल तो खैर पूरे वाकए को स्वाति से मिलने के अजब संयोग या साजिश के रूप में ही ले रहा था।

एक लांक्षित मसखरापन हमारे भीतर उत्पात मचाने की जुगत भिड़ा रहा था। एक वास्तविक दुर्घटना द्वारा चोटिल हो जाने के खतरे से खुद को मुक्त सा महसूस करते

हुए हम फिर भी शहर की नई उभरती ज्यादतियों पर चकित होते हुए कुनमुना रहे थे कि देखो तो, हमारे आस-पास, हमारी नाक के नीचे कितना और कैसा-कैसा फर्जीवाड़ा उगता चला आ रहा है... बिना किसी आहट, सुगबुगाहट या चेतावनी के कोई जब चाहे आपको हलाक कर दे और आप सिर्फ समय और व्यवस्था पर रोते-तिलमिलाते रह जाएँ। हम अपनी बोझिल मानसिकता के विच्छिन्न पंखों पर लदे अपनी ही रौ में मस्ताते बढ़े जा रहे थे कि बैंक से बाहर निकलते ही वे हमें टकरा गए। टकरा क्या गए, उन्होंने खुद ही हमें पकड़ लिया - पता पूछने के सहारे... मारवाड़ी समाज की कोई सराय... जहाँ तक पहुँचने की तड़प ऐसी लाचारी से रिस रही थी कि कोई भी कस्बाई उसकी गिरफ्त में आ जाए। यूँ सारी पहल उनका सरगना यानी तीस को छूता खिचड़ी दाढ़ी चढ़ाए वह अधेड़ ही कर रहा था मगर उस उद्यम में उसकी बगल में आधा कदम सटकर खड़ी वह मिमियाती सी महिला भी थी जो आदमी से पाँच साल छोटी लग रही थी। साथ में चारेक वर्ष का कुछ-कुछ शर्माता कुछ-कुछ बेखबर दिखता एक बच्चा भी था जो उनके एक दंपति होने पर मुहर लगा रहा था।

इस शहर में पिज्जाहट, रेस्टोबार, मॉल्स, फ्लाई-ओवर्स या मोबाइल कंपनियों के शोरूम तो जरूर शिनाख्ती लैंडमार्क बन बैठे हैं मगर इस-उस तरह की कोई पहचान तो... उँहुँक। उनकी मदद की किसी कोशिश से पहले ही हमारे दिमाग की बत्ती जलने लगी। हम चाहते तो उन्हें अनसुना कर आगे बढ़ सकते थे मगर क्रेडिट कार्ड की गले आन पड़ी हालिया परेशानी और स्वाति खांडेकर का बोया मसखरापन अभी ताजा था इसीलिए सेंटीमेंट्स बुलिश हुए जा रहे थे।

उस जोखिम से भिड़ने के लिए हम दोनों ठिठककर वहीं रुक गए। खेल खेलने।

'इधर मारवाड़ी समाज की कोई सराय या दफ्तर नहीं है... किसने बताया...' मैंने उसे तौलते हुए खारिज करते हुए कहा। हमारे उत्तर की सख्ती ने, जैसी अपेक्षा थी, पुरुष को मायूस कर दिया। सामने चलते ट्रैफिक और आसपास घिरी खड़ी हाई - राइजिज ने यकीनन उसकी आँखों के सूनेपन को व्योम में समा जाने का मौका नहीं दिया था इसलिए वह असमंजस में ढहने सा लगा। इसी बात ने महिला के बेरंगत चेहरे को जिस अनजान डर के चाबुक से चलायमान किया उससे साफ था कि वह उसकी सहधर्मिणी अधिक है। धूप और धूल से धूसरित साथ का बच्चा इस सबसे बेखबर ही था मगर उसकी स्थिति इस बात के पर्याप्त संकेत दे रही थी कि उस जोड़े के साथ महालक्ष्मी स्टेशन और हीरा-पन्ना मार्केट के बीच की दूरी इसी नुमाइशी अंदाज में नापते-भटकते उसका बहुत कुछ निचुड़ा जा चुका है।

ठीक!

खाक ठीक! यही सब जाहिर करना तो उनकी चाल होती है।

'लेकिन हमें तो यही बताया था कि महालक्ष्मी के पास मारवाड़ी समाज का कुछ है।'

'किसने बताया?'

'बांदरा में किसी ने बताया था।'

'तो तुम बांदरा से आ रहे हो?'

'हाँ... ना... मगर आ तो शिरडी से रहे हैं।'

'क्या करने गए थे शिरड़ी?'

'बाबा ने बुलाया था बाबूजी... दर्शन करने...।'

यह 'बाबूजी' बड़ी मीठी छुरी होती है। अंग्रेजी में बोले तो हनी ट्रैप!

बांद्रा में ही तो रहता था उन दिनों मैं जब उस रोज स्टेशन से लौट रहा था। ट्रेन सुबह छ्ह बजे, बिना देरी किए पहुँच गई थी। उतरकर मैंने जो ऑटो किया वह बड़ा साफ-सुथरा और अगरबत्तियों से महक रहा था। मैं खुश होकर चालक से बतियाने लगा। बड़ा सलीकेदार लड़का था जो अपनी प्रजाति में तो विलक्षण ही ठहरे। तीन साल पहले मनोविज्ञान में ऑनर्स कर चुका था। कई जगह नौकरी के लिए आजमाइश की मगर मंदी के कारण या भगवान जाने क्यों उसे कम तनख्वाह वाली भी कोई स्थायी नौकरी नहीं मिली। घर का बड़ा लड़का साथ में दो भाई। पिता सेवड़ी में बैग-बेल्ट बनाने की चमड़े की एक गृह इकाई में कमीशन पर काम करते थे।

'करते थे मतलब... अब नहीं...' उसकी जीवनी में आए रहस्य बिंदु पर मेरी सरसरी जिज्ञासा ठहरी।

'नहीं साब... वो बात नहीं है। पिताजी हैं। उन्हीं के आशीर्वाद से सब चल रहा है मगर मेरे बीए करते ही उनके शरीर के आधे हिस्से को फालिज मार गई थी। उन्हें घर बैठना पड़ा और मुझे ड्राइवरी सीखनी पड़ी। अभी तक रात की पाली में ही भाड़े का ऑटो चलाता था क्योंकि इग्नू से एक साल वाला पर्सनल मैनेजमेंट का डिप्लोमा कोर्स कर रहा था... किसी ने बताया था कि उसके बाद कहीं नौकरी...'

उसकी कहानी सुनते-सुनते ही मैं उसे मुख्य सड़क से अपने गंतव्य की तरफ निर्देशित करता जा रहा था। ऑटो जब सोसाइटी के द्वार में घुसा तब उसने उसे धीमा करते हुए वह एक शब्द कहा था जिसे सुनकर मेरे कान हमेशा बदगुमानी में खड़े होते रहे हैं। 'बाबूजी... आज का दिन मेरे लिए बहुत बड़ा है... अभी तक भाड़े का ऑटो चलाता था, आज से यह मेरा अपना है और आप मेरे इस अपने ऑटो के पहले ग्राहक हैं...'

'इस' और 'अपने' को गला रेखांकित कर रहा था।

'बस-बस यहीं...' एक छ्तनार नीम के पेड़ के नीचे पहुँचते ही मैंने उसे रुक जाने को कहा और खामोशी से उतरकर बटुए से पचास का नोट निकालकर उसकी तरफ कर दिया।

रास्ते में भीड़ न मिले तो अमूमन तीस-बत्तीस रुपए बनते थे।

उसे देखकर वह मेरी तरफ बड़ी दिव्य-सी दृष्टि से मुस्कराया और फिर हौले से आँखें मूँदकर दिव्यात्मा की तरह ही बोला 'आप मेरे लिए भगवान समान हैं बाउजी... आपसे कुछ नहीं लूँगा... मेरे खुद के ऑटो के पहले ग्राहक... 'मुझे अच्छा लग रहा था कि चलो, संयोग जो भी हो, मैं किसी के जीवन में ऐसा अहम हो गया... एक पढ़ा-लिखा नौजवान जिसके साथ दुनिया ने नाइंसाफी की... मैं उसके जीवन का हिस्सा...।

'अरे भाई ऐसा मत करो... घोड़ा घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या... तुम अपने जीवन की नई शुरुआत कर रहे हो, बहुत खुशी की बात है पर... लो, लो'। बात खत्म करते हुए मैंने आदेशात्मक सख्ती की तो फिर उसी लफ्ज का सहारा लेते हुए उसने पिघलकर कहा 'ये तो बाउजी हो ही नहीं सकता है। जो मुझे चाहिए आपसे वो हैं आपकी दुआएँ, वो दीजिए। और कुछ नहीं। हाँ, फिलहाल बोहनी के तौर पर आप मुझे एकसौ एक रुपए दें। मैं उन्हें रखूँगा नहीं। दोपहर तक आपके घर लौटाल जाऊँगा।'

नेक काम में निमित्त होने का जज्बा इनसान को कितने उदात्तपने से भर देता है! यहाँ तो बात एकसौ एक रुपए की थी। मैंने उसे सौ रुपए का नोट पकड़ाया तो अपनी नेकदिली का सबूत देते हुए उसने साधिकार वह एक रुपया भी माँगा जो उसके जीवन के इस निर्णायक बिंदु का शगुन होने की पात्रता रखता था। रकम को हाथ में लेकर अर्चना में कुछ बुदबुदाते हुए उसने स्टीअरिंग से तीन बार घुमा-घुमाकर उसे माथे से लगाया और खुशी से उमड़कर मेरे सूटकेस को घर के दरवाजे तक लाकर रख गया

(क्या जरुरत थी, उसमें स्ट्रॉली थी ना!)। ऑटो स्टार्ट करने के साथ उसने खुशी से धन्यवाद के साथ उसी दुपहरिया आने की बात कही थी।

वह उस दोपहर, उस शाम, अगले रोज, उससे अगले रोज या अगले दो बरस यानी जब तक मैं उस मकान में रहा, कभी नहीं लौटा। बड़प्पन की बात नहीं है, उस रोज तो मैं उससे वह रकम नहीं ही लेता। उस मुहूर्त में उसके ऑटो का नंबर नोट करना सरासर पाप होता। इमदाद की गुहार के साथ यह लफ्ज सारी बात को तब से मेरे भीतर एक छल, एक प्रपंच के रंग में घोलकर छोड़ देता है। क्रेडिट कार्ड की खुन्नस के बहाने इस दंपति में आज मैं उसी ऑटोवाले को तो नहीं ढूँढ़ रहा?

मेरे भीतर घूमती रील को रावल कहाँ से पढ़ता मगर उस वक्त कहीं न कहीं वह मेरे साथ जरुर था। मेरे तेवर की आक्रामता को आगे पुचकार से बढ़ाते हुए वह बोला 'बाबा के दर्शन के बाद तुम्हारी जेब कट गई होगी और तुम लोगों के पास जहाँ से भी आए हो, वापस जाने के पैसे नहीं रहे होंगे... यही बात है या कुछ और...।'

'बाउजी औरन की ना खबर, हमारे संग तो जेई भयो।' भाषा के भदेस में आवाज पसीज रही थी।

तभी रावल के भीतर क्राइम ब्रांच के इंस्पेक्टर की आत्मा प्रवेश कर गई जिसका मैं स्वघोषित अर्दली हो उठा।

हम फुटपाथ की चाय की दुकान की बगल में सट गए।

'क्या नाम है तेरा?'

'मान सरोवर।'

'और इसका?'

आँख का इशारा स्त्री को संबोधित था।

'गीरा'

तभी गीरा के मुँह से निकला 'राखी'।

प्रारंभिक विजयी भाव से रावल ने तरेरकर मेरी तरफ ऐसे उँहूँ किया जैसे इंस्पेक्टर बना फिल्मी रजनीकांत ऐसे मकाम पर तिरछी सूत भर मुस्कान के साथ हथेली में बेंत थपकाते हुए करता है।

'मैं इसे गीरा कहता हूँ... वैसे घर का नाम राखी है' सकपकाकर उसने बिगड़ती बात सँभाली।

'और ये बच्चा?'

'हमारा ही है।'

उनकी मुद्रा यकायक और ज्यादा रक्षात्मक हो उठी... जैसे बच्चे का डीएनए टेस्ट किया जाना हो।

'वो तो ठीक है... नाम क्या है?'

'प्रवीण किशोर।'

'बिहार से हो क्या?' युग्म नाम आते ही मेरे मुँह से अकस्मात निकला।

'बाबूजी हम बीकानेर से हैं।' इस बार प्रतिरक्षा में गुहार करती महिला बोली।

तो यह भी 'बाबूजी' वाली है... नॉट जस्ट ए डेमसल इन डिस्ट्रेस बट द कॉन वूमेन...।

साफ था कि हमारे सवाल की शरारत उनसे अछूती थी।

'तुम दोनों शादी-शुदा हो या...'

आधा खुला सवाल जैसे उनका वस्त्रहरण कर रहा था। महिला की नजरें नीचे गढ़ी थीं। पुरुष ने अलबत्ता 'हाँ' के अभिप्राय में ऊपर-नीचे गर्दन हिलाई।

'अबे चुप क्यों है... भगा के लाया है क्या' दूसरे दौर की आभासीय सफलता के अभिमान से रावल लगभग गुर्रा पड़ा।

'नहीं साब, हम सपरिवार हैं।'

उसने बहुत सँभलकर, अपने पर काबू पाते हुए अल्फाज सरकाए। मेरे अंदर तभी यह ख्याल कौंधा कि इस सवाल से आहत होकर वह औरत अपनी किस्मत का रोना रोते हुए वास्तव में रो पड़ेगी और हमारी बोलती बंद हो जाएगी।

मगर ऐसा कुछ नहीं हुआ तो मेरा पलड़ा फिर रावल की तरफ झुक गया।

कुछ तो गड़बड़ है! मुंबई में क्या मुमकिन नहीं है? हर बंटी के साथ बबली खड़ी है। और कहीं हों न हों, बट्टेबाजी में औरतें मर्दों की खूब बराबरी कर रही हैं। जरुरत पड़े तो भाड़े की भार्या और भाड़े का क्या कुछ नहीं मिल जाता है यहाँ। भड़ेरियों की करतूतों से अखबार भरे रहते हैं। चारसौ बीसी का अंतत: तो एक आर्थिक पक्ष ही होता है।पवई के कोस्तुभ चोकसी का किस्सा कितने दिनों तक सुर्खियाँ घेरे रहा था। उसने भाड़े की एक बीवी लेकर हीरानंदानी में सुंदर सा दफ्तर खोला और तीन महीने में निवेशित रकम दो गुनी करने की स्कीम जनता के बीच चला डाली। पूरे अभियान में उस तथाकथित पत्नी मीनलबेन की बड़ी भूमिका थी। उसने हर टावर के क्लब हाउस में जाकर पावर पॉइंट प्रेजेंटेशन देकर सिमाने पर सोती गृहणियों को उकसाया-ललकारा कि वे क्यों नहीं चाहतीं कि ग्लोबलाइजेशन के इस जमाने में जब दुनिया भर की बड़ी कंपनियों के इंडिया में आने से बाजार इतना बड़ा हो गया है, उनके परिवार की दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की हो या फिर कल उनके पति को कुछ हो-हवा जाए तो घर-परिवार कैसे चलेगा? खर्चे कभी कम होते हैं क्या? स्कीम थी कि हर निवेशक एक लाख साठ हजार देगा जो तीन महीने बाद तीन लाख बीस हजार हो जाएँगे। मिलने वाली रकम के चैक भी अग्रिम रुप में दे दिए गए, वे भी राष्ट्रीयकृत बैंक के जरिए। हर व्यक्ति को आगे तीन निवेशक और बनाने थे जिसके लिए बोनस का प्रावधान अलग मुकर्रर था। आनन-फानन में साढ़े आठ करोड़ जमा कर लिए गए। पहली किस्त के चैकों को भुनाने का आनंद भी लोगों को मिला मगर तीसरे महीने जब बैंक से चेक बाउंस हो गए तो मामले का भंडाफोड़ हुआ। कोस्तुभ तो खैर फिर भी पकड़ लिया गया मगर मीनलबेन तो आज तक फरार है। स्त्रियों की भागेदारी के बिना आजकल कोई चीज पूरी होती है? पूरे प्रपंच को एक पारिवारिकता और नतीजतन विश्वास से वे ही तो सुवासित करती हैं। एक खास वर्ग में तो बिना किसी वैधता के वे 'आर्म-कैंडी' के रूप में समादृत हैं।

यहाँ भी उसी किस्से की पुनरावत्ति के आसार थे। गनीमत थी, मैं और रावल जैसे दूध के जले इनसे भिड़ गए। दोपहर होने जा रही है, यानी अभी तक तो पता नहीं कितनी मासूम जानों को ये अपनी करुण-कथा में फ्रांस चुके होंगे। लाचार रोनी सूरत के संग बदहाल मोहिनी मूरत और साथ में नादान बच्चा, करुणा-जाग्रति अभियान को और

कितना असबाब चाहिए? ऐसे ही निरीह दीन-हीनों को देखकर बाबा भारती ने डाकू खड़कसिंह से कृपा-दया बरतने की गुहार की होगी !

'कितने पैसे चाहिए' रावल को सोच में देख मैंने नरमाई से पूछा।

'साढ़े तीन सौ में काम हो जाएगा बाऊजी... रणकपुर एक्सप्रेस चलती है बांदरा से...।'

'बाऊजी को छोड़, ये बता कितने बजे चलती है?' गैर-जरुरी दिखते सवाल भी अन्वेषण का जरुरी हिस्सा होते हैं। उनके जवाबों में कभी बड़े काम की चीजें निकल आती हैं या कम से कम झूठ की सीवन तो उधड़ने ही लगती है, खासकर अप्रत्याशित बिंदुओं पर।'

'दोपहर बाद तीन बजे चलती है।'

'तुम्हारे पास मोबाइल तो होगा?' मुझे वक्त खराब करे देख रावल फिर मोर्चे पर आ गया।

'मोबाइल नहीं लाए थे साब।'

'लेकर ही नहीं चले थे या साथ लेना भूल गए थे।'

'साथ ले कर ही नहीं चले थे।'

'अच्छा, घर से निकलर कोई बाहर जाता है... इतनी दूर, बिना मोबाइल के?'

'परिवार तो साथ ही था साब।'

'परिवार में बीवी-बच्चे के अलावा और कोई नहीं आता है बे' अपनी बात को और उमेठते हुए मैंने कसा।

'हम ठीक कह रहे हैं साबजी... हमारे और कोई नहीं है।'

'क्यों माँ - बाप - भाई - बहन...'

'नहीं वैसे सब हैं... बीकानेर में ही हैं मगर हमसे कोई वास्ता नहीं रखते हैं।'

'और इसके घर वाले... तेरे ससुरालिया...' रावल ने आशयपूर्ण ढंग से स्त्री को दायरे में लिया।

'इसका भी कोई नहीं है।'

'क्यों, क्यों' मैं फिर बीच में कूद पड़ा।

करुण कथा में एक रहस्य-कथा आकार लेने लग रही थी।

'साब, हमने लव-मैरिज किया था। मैं तो राजपूत हूँ और ये ब्राह्मण। घरवालों ने हमें छेक रखा है।'

मुंबई का समुंदर भी कैसा खटमंदरा है। तमाम भाषाओं की नदियाँ कुछ कुछ उड़ेलती-सकेरती हैं तो यहाँ का मिजाज बनता है।

'निष्कासित' के लिए 'छेक' का प्रयोग यहाँ सुनना फिर भी दुर्लभ ही होगा।

'भगा ले गया था क्या?' मुझे छेक पर टेक लगाने से बेखबर रावल ने चुस्की लेते हुए ऐड़ लगाई।

'हाँ साब... दो साल तक हम भागे रहे। मेरे खिलाफ एफआईआर करा दी गई, अपहरण का केस लगा दिया। बालिग थे तो बच गए। जयपुर में जाकर कोर्ट मैरिज कर ली तो बच गए...'

'जयपुर में कौन है तेरा... किसने गवाही दी थी, उसका नंबर है' रावल ने निर्ममता से कट करते हुए उसे रोका। किसी लैब्राडोर की तरह हर बात में वह उनकी चारसौबीसी का असला सूँघ रहा था।

तेलिया तेल की पड़ी, मसंधरा खल की पड़ी।

'हनुमान मोहता... उसका नंबर नहीं है' थोड़े प्रयास के बाद आदमी की तरफ से जवाब आया।

'पता है?'

'पता भी याद नहीं।'

'जयपुर में कौन से इलाके में रहता है मोहता?'

आदमी बड़ी देर तक कशमकश करता रहा मगर स्पष्ट जवाब नहीं दे पाया। रावल को लगा तीर सही निशाने पर जा लगा है। आत्मविश्वास से स्त्री की तरफ घूरकर कहा

'इसे भी याद नहीं'। गीरा या राखी जो भी वह थी, इस पर भावहीन सी खड़ी रही। इससे उत्साहित होकर रावल ने हुक्म देते हुए कहा 'चल अपना नंबर बता... मैं अपनी बीकानेर ब्रांच में कहलाकर पता करा लूँगा।'

थोड़ी सकपकाहट के बाद पुरुष ने एक नंबर बताया जिसे रावल ने जीरो लगाकर अपने मोबाइल में दर्ज करके उसका हरा बटन दबा दिया। आदमी गिड़गिड़ाकर कहने लगा कि यह नंबर अभी नहीं लग पाएगा क्योंकि उसकी बैटरी पूरी तरह डिस्चार्ज हो गई होगी। दूसरी तरफ कोई घंटी नहीं बजी तो नजर गड़ाते हुए रावल ने आदमी को फिर लताड़ा 'बीकानेर में कोई तो होगा जिससे हम कन्फर्म कर सकें के तू वाकई वहीं रहता है, वहाँ कुछ करता है।'

बहुत वाजिब सवाल था। उधार देने वाला हर बैंक अपने संभावी ग्राहक की पहचान और ऋण-वापसी की क्षमता के बारे में कुछ तो सुनिश्चित करता है। यहाँ तो यह आदमी पहचानगत सबूत का एक रेशा तक नहीं दे रहा है जिससे लगे कि यह वह नटवरलाल नहीं है जिनकी खबरों से आए दिन 'मिड-डे' और 'मिरर' का कारोबार चलता है। आदमी को दोमने में देख औरत सक्रिय हो उठी और वह और वह भी खासे औरताना ढंग से - यानी हलक में रुलाई के पुट को पूरे अनुपात में सानते हुए।

'हमें अपने बच्चे की सौं... एक ही बच्चा है हमारा... भगवान न करे कोई ऐसी मुसीबत में फँसे...' आशय में इसी तरह का कुछ कहते हुए उसने बच्चे को अपने से सटा लिया।

रावल ने इतनी दक्षता से मोर्चा सँभाल रखा था कि मेरी उपस्थिति निष्क्रिय होती जा रही थी। बगल में खड़े एसार हाउस से लोग लगातार आ जा रहे थे। जल्दी जल्दी कदम बढ़ाते लोग। शाम होते होते ये छ्ह बारह, छ्ह अड़तीस, सात चार या आठ छ्प्पन की अपनी-अपनी स्लो या फास्ट लोकलों में घुसटकर अगले दिन आठ ब्यालीस, नौ सत्रह या मेरी वाली नौ बत्तीस की लोकल पकड़कर फिर से अपने मोर्चे पर लगे होंगे। ट्रैक के उस तरफ एकाध बीपीओज हैं जिनकी अपनी स्वायत्त, अभेद्य दुनिया है। कोई नहीं जानता ये लोग कब आते हैं, कब जाते हैं। ज्यादातर रात की पाली में छूटते हैं। वहीं से पिक-अप और ड्रॉप किए जाते हैं। त्रिकोणीय प्रेम संबंधों या अवसाद के कारण जब कुछ अपनी जान से खेल उठते हैं तो 'टैकी मरडर्ड' या 'टैकी लीप्स टू डैथ' जैसी एक कॉलम या बाक्स वाली खबर बनती है जिसकी जड़ों को कुरेदकर सुलभा जोशी या सिरिल मेंडिस जैसी साल भर पहले रिपोर्टिंग में आई पत्रकार अपनी संवेदनाएँ चमकाती है। वह लड़की जो ईयर-प्लग लगाए तल्लीनता से कुछ सुनती और कुछ वकालती ढंग से हवा में बहस करती जा रही है कितनी आभाहीन है। टी-शर्ट पर जरुर

कुछ गुदगुदाता सा लिखा था मगर उसी को खबर नहीं रही होगी कि वह क्या है। स्टार-प्लस और सोनी के सीरियलों में ताजगी बिखेरते कमसिन चेहरे पता नहीं कहाँ से आते हैं, अक्खी मुंबई तो रोजमर्रा के अंतहीन संघर्ष में फँसी रहती है। बैंक के बाजू में एक स्लिमिंग सेंटर के इंटीरियर का काम जोर-शोर से चल रहा है। सामने लाल बत्ती पर भीख माँगते बच्चे एक घेरा बनाकर कुछ बाँट-खा रहे हैं। एक बच्चा कलाबाती करने में मगन है। मूँछ्धारी पान वाले को एक ग्राहक तीन मर्तबा कलकत्ता एक सौ बीस बनाने का आग्रह कर चुका है। हमें जत्थे में खड़ा देख दो-तीन टैक्सियाँ मंद होकर आगे बढ़ चुकी थीं। बेवक्त किसी बिल्डिंग से निकलकर तीन टाईधारी कटिंग चाय पर शेयर बाजार या तेंदुलकर की रक्षात्मक बल्लेबाजी की कमियों पर आपसी चिंताएँ बाँट रहे हैं।

रावल के प्रतिवार ने मुझे पुनः सक्रियता में खड़ा कर दिया।

'बच्चे की कसम तो यूँ खा रही है जैसे यहाँ अकाल पड़ रहा हो। जो बात पूछी गई है उसका तो जवाब नहीं और हाँक इधर-उधर की रही है... अच्छा ये बता, ये जहाँ काम करता है उसका कोई नाम-पता है? कहाँ क्या काम करता है? तुम लोग पैसे लेकर चंपत हो गए तो हमारा तो पैसा गया खटाई में। क्यों?'

वैसे अब इसमें शक भी क्या था। उन दोनों की जिस तरह बोलती बंद थी उसे देखकर तो अपना शक सही लग रहा था कि ये लोग ऐसे पेशेवर और पहुँचे हुए फकीर हैं जो मध्यवित्तीय लोगों का भावनात्मक दोहन करके अपना पेट पालते हैं। कौन रुपए दो रुपए के लिए हर आने जाने वाले से अपाहिजों की तरह गिड़गिड़ाए। आजकल और वह भी इस भागमभाग भरे शहर में किसका किसके लिए दिल पसीजता है। धंधे धंधे की बात।

तो करें अपना धंधा। हम उनकी चपेट में नहीं आने वाले। अनजाने में जेब कट जाए वो अलग बात है मगर किसी के मजलूम होने की आड़ में तो जेब नहीं कटानी है। मुझे उसी वक्त यह भी लगा कि हम किस बात के लिए अपना वक्त जाया कर रहे हैं? वे खिलाड़ी हैं, फरेबी हैं, तो चलता करें न उन्हें। या खुद चलते बनें! और देने की बात है तो साढ़े तीन सौ रुपए ही ना? दो लोगों के बीच क्या भारी हैं?

फिर कुछ सोचकर, थोड़ा नरम पड़ते हुए आदमी को मुखाबित होकर रावल ने जोड़ा 'मुंबई महानगरी है, यहाँ तुम्हारा कोई भाई-बंध न हो ऐसा तो मान भी लो मगर कोई दूर का दोस्त या दोस्त का दोस्त-परिचित न हो, ऐसा तो हो नहीं सकता। ऐसा तो कोई जरुर होगा। उससे कॉन्टैक्ट क्यों नहीं करता... पहुँचा हम देंगे।'

इस बार आदमी फीके से मुस्कराया। यानी रावल जिस दूर की कौड़ी को तोड़कर लाया था, उसे खारिज-सा करने वाले भाव से। उसे ध्यान से देखने पर मुझे लगा यह आदमी कितनी मोटी चमड़ी का है। पैसों के लिए गिड़गिड़ाना तो दूर, यह तो कायदे से हमारे सवालों का जवाब तक नहीं दे रहा है। हम तो इस बाबत सिर फोड़ रहे हैं कि कहीं वह चालबाज तो नहीं है; उसे कुछ नहीं पड़ी है कि जताए कि वह वो नहीं है। हमारी ही गलती रही जो सीधे रास्ते चलने की बजाय शहर के खास गली-नुक्क्ड़ों पर दो चार रत्ती छिंटकी रह गई इंसानियत का गला घोंटने वाले शातिर कलाबाजों के मुँह लग गए। रावल के मन में भी ऐसा ही था क्योंकि अब हम बहस के मूड से निकलकर उन्हें अपने हाल पर छोड़कर बेरहमी से आगे बढ़ने जा रहे थे कि आदमी ने जज के सामने पेश किए मुल्जिम की तरह हाथों को लुंज-पुंज जोड़कर समर्पण में पुनः अनुनय की जो प्रकारांतर से रावल के दिए गए सवाल का जवाब थी।

'साब, हमारी समझ में कोई नहीं है। दूर दूर तक नही है' आदमी के पक्ष को उतनी ही तल्खी से आगे बढ़ाती औरत बोल पड़ी 'हम तो शिरडी गए थे। लौटने का टिकट था। दर्शन से पहले ही किसी ने पर्स मार लिया। इतनी तो भीड़ थी। बड़ी मुश्किल से तो यहाँ पहुँचे हैं।'

'आप हमारा कुछ रख लें... ये घड़ी है...' पुरुष ने चरम हताशा में कूदकर अपना बायाँ हाथ आगे कर दिया।

घड़ी चल रही थी मगर सूरत-सीरत से ज्यादा काम की नहीं थी।

'और इसके पास... इसके पास तो...' मैंने औरत की तरफ मतलबपरक ढंग से देखते हुए सुझाया।

'मेरे... मेरे पास कुछ नहीं है' औरत ने अपने जिस्म को यकबयक ऑफर-सा करते हुए चिरौरी की।

और वाकई उसके जिस्म पर कुछ नहीं था, सिवाय उस स्त्रियोचित मांसलता के जिसमें वह स्वाति खांडेकर को स्पष्ट अंतर से पछाड़ दे रही थी। कोई अँगूठी नहीं पहनी थी। कानों में शर्मसार से पड़े बूँदे थे। पैरों में साधारण से प्लोटर्स थे। अजीब बात थी कि उसके गले में मंगलसूत्र नहीं था।

'चल ऐसा कर, यहाँ अपना पता लिख... हम पता कर लेंगे...।' रावल ने बात खत्म करने के अंदाज में जेब से निकालकर एक कागज उसके सामने रख दिया। पल भर वह

लिखने के लिहाज से सादे कागज के नीचे रखने की कोई चीज तलाशने लगा। जब कुछ नहीं मिला तो वहीं घुटनों बैठकर लिख दिया और खड़े होने से पहले ही रावल को दे दिया।

'पुलिस थाना कौन-सा लगता है?' घसीट का मुआइना करने के साथ रावल ने तुनककर कहा तो उसने कहा 'गुसाइसर' जिसे रावल ने अपने हाथ से लिखकर जोड़ दिया।

'ले' बटुए से सौ-सौ के चार नोटों के साथ अपना कार्ड उसकी तरफ करते हुए रावल ने सख्त लहजे में चेतावनी दी 'वापस करने हैं नहीं तो देख लेना।'

रावल के निर्णय पर मैं चौंका। सहयोग के तौर पर दो सौ रुपए अपने कच्चेपन में उसे वहीं देने को निकाले तो उसने इशारे से मना करते हुए उन्हें चेतावनी देने का क्रम जारी रखा।

रावल ने उन्हें रुपए क्यों दिए? कहाँ तो वह हर आढ़े-टेढ़े कोण से उनकी बोलती बंद किए जा रहा था और कहाँ ऐसा, इतनी जल्दी हृदय परिवर्तन! एक दुनियादार किस्म का व्यक्ति ऐसे मासूम कुकुरमुत्तों के सामने ढह जाए तो हैरत तो होगी ही। अपनी उत्कंठा शांत करने के लिए मैंने पूछना चाहा था मगर एक तो उस दिन इतना अवकाश नहीं था और दूसरे अपनी हैसियत देखते हुए वह रकम अंतत: इस काबिल भी नहीं थी।

सामने ओलिव पर इतने में एक छोटा पैग बनता है।

अगले दो दिनों का फिर भी हमें इंतजार था। यकीन जीतता है या जीवन? दोपहर दो बजे तक उनकी गाड़ी बीकानेर लग जाएगी। आजकल तो पोस्ट ऑफिस भी चौबीस घंटे में कहीं भी मनीऑर्डर भेजने का दमखम भरते हैं।

दूसरे क्या तीसरे दिन भी मनीऑर्डर नहीं आया।

चौथे रोज मेरे पास बैंक से फोन आया कि मेरे क्रेडिट कार्ड वाले मामले में ब्रेक-थ्रू मिला है। रावल को साथ लेकर मैं दौड़ते हुए एक बार फिर बैंक पहुँचा। स्वाति खांडेकर ने अपने किसी सहायक के साथ हमें गामदेवी थाने भेज दिया। थोड़े बेमतलब इंतजार और चार-पाँच कागजों-रजिस्टरों पर हस्ताक्षर करने के बाद एक अर्दली हमें लॉकअप रूम की तरफ ले गया जहाँ हमारा गुनाहगार बंद था। उसे देखकर हमारी आँखें खुली की खुली रह गईं। बच्चा समेत यहाँ भी एक दंपति थी - ठीक वैसी जैसी उस रोज

महालक्ष्मी स्टेशन के पास बैंक के सामने हमसे टकराई थी। उनके बयानों और उनकी मार्फत इकट्ठी की गई जानकारी से जो तस्वीर उभर रही थी वह कार्यपद्धति के स्तर पर वैसी ही थी जो कुछ दिनों पहले किसी अन्य बैंक के संदर्भ में अखबार के तीसरे या पाँचवे पन्ने पर 'क्रेडिट कार्ड फ्रॉड बस्टिड' जैसी सुर्खी के नीचे तीन स्तंभों में दर्ज थी।

तब किसने सोचा था कि इतनी जल्दी मैं ही इसका शिकार बन जाऊँगा। ज्वैलर के यहाँ लगे क्लोज सर्किट टीवी कैमरे तथा मोबाइल तंत्र ने सब नीर-क्षीर कर दिया। इन लोगों ने उसी दिन एअरटेल के एक तकनीकी मैनेजर के क्रेडिट कार्ड पर भी जेवरात खरीदे थे। उसके कार्ड पर की गई शॉपिंग की टाइमिंग का पुलिस ने उसके सहयोग से उस गोलांश में उस समय सक्रिय मोबाइल नंबरों से मिलान कराया और कैमरे के कवरेज से उस मोबाइल धारी को पृथक कर दिया। उसके बाद उन्हें ट्रैक करना मुश्किल न था। कल सुबह मलाड के एक अपार्टमेंट से इस जोड़े को पकड़ लिया गया। बच्चा भाड़े का था मगर फिलहाल उसे भी ले लिया गया था। काफी जब्ती भी हो गई थी। पूरे गैंग में पचास से अधिक लोग हैं। तंत्र के मास्टर माइंड आई आई टी मुंबई के तीसरे वर्ष के दो ड्रॉपआउट्स हैं जिन्हें दूसरे तकनीकी दिमागों का अनुभव और सहयोग रहता है। फिलहाल वे फरार हैं। फर्जी तरीके से खरीदे-हथियाए माल को डिस्काउंट पर तुरंत निकाल देना होता है क्योंकि रखा माल बारूद माफिक होता है। ज्यादातर आदमी-औरतें राजस्थान और मध्यप्रदेश के दूरस्थ इलाकों से होते हैं। बातचीत के तौर तरीकों से ही आदमी-औरत और बच्चे की यूनिट बनती है। संभावित कमजोरियों और रुक्ष बिंदुओं को प्रशिक्षण से पाट दिया जाता है।

उस भीगे और भारी भरकम चकित प्रदेश में सैर करना जानकारीपरक जरूर रहा हो, सुखद कतई नहीं था हालाँकि मुझे राहत मिली थी कि चलो नुकसान की कुछ भरपाई तो हो जाएगी। आगे तो इस क्रेडिट कार्ड के संभावित दुरुपयोग के खिलाफ भी एक इंश्योरेन्स ले लूँगा। रावल अलबत्ता जाहिरन कुछ ठगा-सा महसूस कर रहा था।

ओलिव पर एक शाम बिताना तो वैसे भी बनता था।

वहाँ से निकलकर 'आस्क मी' सर्विस से नंबर लेकर मैंने आलिव पर 'टेबल फॉर टू' बुक करा दी।

यह मुंबई का परिचित रहस्य है। आपने दिन में जितनी भी जिल्लत झेली हो, बॉस की डाँट खाई हो, बड़े क्लाइंट के इंतजार और मुलाकात में घंटों बिगाड़ने के बावजूद उससे ऑर्डर लेने में नाकामयाब रहे हों, मजबूत फंडामेंटल्स की कंपनी के शेयरों ने किसी फिरंग हवा के चलते आपको पटकी खिलाई हो, किसी खास के साथ पोषित-निवेशित

भावनाओं का आज बेतरह कचूमर निकला हो, बच्चे की सोहबत और सलूक को लेकर स्कूल से आज फिर शर्मिंदगी उठानी पड़ी हो, भरी दुपहरिया ट्रैफिक ने झिलाया हो, ब्याज या फोरेक्स बदले में दुलत्ती पड़ी हो, शाम ढलने के बाद लुभावनी खास साज-सज्जा के बीच मोमबत्ती की मद्धम रोशनी और हल्के सुरीले संगीत की संगत में अपनी पसंदीदा मार्गरीटा, डाइकीरी या मार्टिनी का पहला घूँट गले से उतारते ही आप सारे अवसाद, हताशा और जंजाल को विस्मृत कर एक नई दुनिया, एक नई जन्नत से मुखातिब हो जाते हैं।

यह कोई जादू नहीं, बाजार की ही सभ्यतागत स्वच्छंदता का जश्न है जिसे ओलिव जैसे पचासों ठिकानों को पनाह देना नसीब है। त्रास और संघर्ष की दिन भर चलती चक्की ने अपने मिजाज का संतुलन बनाए रखने के लिए मानो ऐसे 'कूल जॉइन्ट्स' को लोगों को फुर्सत से जीने का बेपनाह लायसेंस दे रखा है। किसी बाहरी को तो ज्यादातर युवा जोड़े वैभव और एलीटिज्म का विज्ञापन करते हुए लगें मगर उन्हें किसी की नहीं पड़ी होती है। जश्न और आनंद के बीच यहाँ भी छद्म-बौद्धिकता और गणनातंत्र जब मर्जी बरगलाते भटकते मिल जाएँगे। सामने की तीसरी टेबल पर कॉलिज की लड़कियों का गिरोह है जो लगातार चलती हँसी-ठिठोली से पूरे आसपास को जीवंत किए डाल रही हैं। किसी एक के जन्मदिन पर दी जाने वाली ट्रीट का मामला लगता है जिसमें घरवालों की उपस्थित वर्ज्य है।

ओनली फ्रेंड्स एलाउड। किसी नामी डिजाइनर की मेहरबानी से अनचाहे ही एक कमसिन की दोमट सी नग्न पीठ का बड़ा क्षेत्रफल मेरी नजरों के दायरे में जमा बैठा है। हँसी ठिठोली के वक्त एक के जबड़े में फँसे ब्रेसिस झलकते हैं। हेअर बोंडिंग तो सभी ने करा रखी है। अभी-अभी उन्होंने 'ईये' और 'ऐये' के कैशोर्य उल्लास के साथ मोबाइल के कैमरों से कई ग्रुप फोटो खींचे हैं जिन्हें जल्द, शायद वहीं बैठे बैठे, वे फेसबुक पर अपनी एलबम में अपलोड और फिर टैग कर देंगी, जिन पर मित्र दायरे से 'नाइस पिक्स' और 'ग्रेट' जैसी प्रतिक्रियाओं की बौछार होने लगेगी। ऐसी ही किसी शाम पता नहीं किस रेस्तराँ में गिटार, बाँसुरी और संतूर की जुगलबंदी से झरता 'तेरा जाना ऽऽ, दिल के अरमानों का लुट जाना ऽऽ' यहाँ आकर मन को यूँ सहलाने लग रहा है कि वाद्यों से लता की आवाज में बोल फूटकर निकलने को हो रहे हैं। हर चीज की वजह कहाँ होती है।

माहौल का ऐसा उदात्तीकरण और बूँद दर बूँद कॉकटेल का अनुमापन रावल को उस अनुभव की स्मृति तक जाने से नहीं रोक पाया है जिसे गामदेवी थाने में हुए खुलासे ने एक छेड़ के साथ उकेर दिया है।

दिल्ली यूनिवर्सिटी के दिनों की बात है। कॉलेज के बस स्टॉप पर उतरा ही था कि एक बुजुर्ग सरदारजी टकरा गए। छिछली दूधिया दाढ़ी के बीच दो-तीन जगह काले बालों के चकत्ते लिए। आँखों पर गांधीनुमा गोल लेंसों का चश्मा। इससे पहले कि मैं गौर कर पाता उन्होंने साँस भरते हुए पूछा 'ब्ब... बेटे सुनो... त...तुम ज्योग्राफी डिपार्टमेंट में हो?

'जी नहीं , मैं तो सोशयो...' मैंने लफ्ज धकेले।

उनका चेहरा किसी मरियल सनकी की तरह कँपकँपा रहा था।

'मेरा बेटा यहाँ (बिल्डिंग की तरफ इशारा)... ज्योग्राफी में है। फाइनल ईयर में। लेकिन अब पता नहीं क्या होगा मेरे गुरबचन का' उनकी वेदना हद पार करके आत्मसंबोधन की अवस्था में जा चुकी थी हालाँकि इस बार आवाज में हकलाहट नदारद थी। उन्हें देख कर लगा मानो मेरे पिता सामने आ खड़े थे।

मेरे हर्निया के ऑपरेशन के वक्त मैंने उन्हें ऐसे ही हाँफते-घबराते देखा था।

'क्या हुआ... क्या हुआ आपके गुरबचन को?' उनसे एकमएक होते हुए मेरा तालू सूखने लगा।

मेरा कौतूहल जानते ही उनकी खाँसी उखड़ गई। खाँसी का एकाध दौर तो इतना विलंबित, गहरा और जकड़नभरा था कि लगा, लड़के का तो पता नहीं, कहीं बाप न यहीं टपक जाए। खुद पर चेष्टा से काबू पाते हुए वे नीचे बैठकर बलगम उगले जा रहे थे। तीन चार सहपाठियों ने सहारा देकर उनपर 'अरामनाल पाप्पाजी' का मरहम लपेटा। खाँसी के दौरे ने उनका चेहरा सुर्ख कर डाला था। नाक तक में पानी उतर आया था जिसे दाईं जेब से गँदला-सा रूमाल निकालकर उन्होंने अकबकाकर पोंछा और हाँफते हुए ही 'थैंक्स' प्रेषित किया। उस अजनबी बूढ़े को सांत्वना देने के लिए हम कुछ पूछ-गछ करते इससे पहले ही उसने एक तुड़ी-मुड़ी पर्चा हमारी तरफ बढ़ाया जो किसी नर्सिंग होम का प्रेस्क्रिप्शन था।

डेशनुमा तीन-चार समानांतर रेखाओं के सामने घसीटा मजमून दवाइयों का हो सकता था।

ट..टीबी है उसे... दीज मेडिशन्स आर रिक्वायर्ड अर्जेंटली फेलिंग व्हिच हिज लाइफ... इफ यू कैन कॉन्ट्रीब्यूट, आई शैल एवर बी इनडैटिड टु यू... जस्ट टू हंड्रड एंड थर्टी फाइव सर... माइ सन जीबी... ओ व्हाट ए ब्राइट एंड वंडरफुल गाय... यू मस्ट हैव

सर्टेनली सीन हिम एराउंड... '। अंग्रेजी में उनकी सीत्कार सुनकर हम और ज्यादा उनके साथ हो लिए। कितना पढ़ा-लिखा और तहजीबदार आदमी है? इकलौते बेटे की जान की खातिर इस पहर में कैसी मजबूरी उठा रहा है। भगवान न करे किसी के साथ ऐसा हो! उस उम्र में रोज भीतर कसकते कच्चे आदर्शों की पौध को यकायक एक मकसद पेश हो गया।

एक सही मकसद भीतर तक कितने नैतिक उत्कर्ष की ठंडक देता है !

उस समय वहाँ हम तीन थे। थोड़ी देर में विभाग की तरफ जाते तीन और आ गए। सबने मिलमिलाकर सरदारजी का काम कर दिया।

'गॉड ब्लैस यू बॉयज... यू हैव ग्रांटिड लाइफ टु माइ सन' कहते हुए उन्होंने सबके हाथों को ऐसे हुमककर चूमा कि हम सब असहज हो गए।

दोपहर कैंटीन में अरुण परिहार से जब मैंने सुबह के वाकए का जिक्र किया तो फौरन कुछ भाँपते हुए उसने इशारों की संगत में तुनककर सरदारजी का हुलिया बताना शुरू कर दिया '...सफेद दाढ़ी है ...खूब सारा बलगम थूकता है, प्रेस्क्रिप्शन लेकर घूमता है... भले आदमी, प्रेस्क्रिप्शन की तारीख देखी थी? टीबी का इलाज ऐसे होता है? तुम बकरा बन गए प्यारे!'

मैं अपनी आँखिन देखी पर अभी भी कायम रहना चाहता था मगर उसके भीतर की तरेड़ें ऐसे चुभने लगीं कि कुछ बोला न जाए। वार्धक्य, कमजोरी और लाचारी में ठिठुरती उसकी काया किसी भी लिहाज से उस दूसरी सच्चाई का अंदेशा नहीं दे सकती थी जो उस वक्त परिहार के कब्जे में रहकर हमें बिला रही थी। कैसी बदहवास और दमतोड़ तो उसकी खाँसी थी। क्या वह नकली थी? और वह बलगम? यक! कंठ की खरखराहट को जाने भी दें मगर वह टूटती-गिरती क्षीणकाय देहयष्टि! वह मिलावट-सा कुछ कर दिखाने लायक रह भी गई थी। नितांत सदमाग्रस्त होकर उसके वीभत्स और असहनीय यथार्थ का मैं अपने यथार्थ से डबजोड़ बिठा रहा था कि प्रहार की तरह खुलासा करते हुए उसने जोड़ा 'दिल्ली में सौ से ऊपर कॉलिज और इतने ही छोटे-बड़े अस्पताल होंगे। शनिवार-इतवार और दूसरी छुट्टियों को निकाल दो तो एक संस्था का साल में एक बार भी नंबर नहीं आएगा। फिर पेशेंट्स-स्टुडेंट्स सब तो बदलते रहते हैं। वैसे भी कौन याद रख पाता है कि इतने दिन पहले किसी ने...।'

अपनी आँखों का भरोसा भी कोई चीज होती है मगर लग रहा था एक गर्म दहकता चाकू मक्खन की टिकिया में धँसे जा रहा है।

'दो-तीन साल बाद, बैंकों के इम्तहानों की कोचिंग के सिलसिले में एक रोज जब मैं करोलबाग गया था तब, वहीं देशबंधु कॉलिज जाना हुआ था। मुख्य दरवाजे से निकलकर मोटरसाइकिल स्टेंड की तरफ जा रहा था कि बीच में पेड़ की कलबूत पर बैठे छात्रों को वह संबोधित करता दिखा। बस, भंगिमा और अंदाज जरा अलग थे। शक की कोई गुंजाइश नहीं थी। चंद पलों बाद शिकार होने वाले बिरादरानों की सोचकर, एक ठुकराई प्रेमिका की तरह मेरे भीतर अपमान और धोखे का जख्म अचानक हरा हो गया... लोगों की भावनाओं से धोखाधड़ी का पेशा... इससे जघन्यतर अपराध क्या होगा? बड़े नामालूम ढंग से मैं पेड़ की गोलाई से टिककर उस पर गौर करने दूसरी तरफ मुँह फेरकर खड़ा हो गया... अपनी अदाकारी की इंतहा के तौर पर अब यह लंबा खाँसकर थूकेगा, अब टीबी से पीड़ित तथाकथित इकलौते बेटे का प्रेस्क्रिप्शन निकालेगा... अब यह...' मेरे भीतर यही विजुअल आने को आमादा था मगर उसने ऐसा कुछ नहीं किया। मैं हैरान। सामान्य ज्ञान और इंग्लिश कम्युनिकेशन की दो पुस्तिकाएँ वह सभी को बाँट चुका था और इंतजार कर रहा था कि 'एक्सैल एकेडेमी' में शामिल होने के लिए वे लोग जो अपना नाम - बतौर टोकन एक अग्रिम राशि - देने के इच्छुक हैं, आगे बढ़ें। प्रति बैच सिर्फ तीस छात्र लिए जाने हैं। देर हुई तो गए काम से। इतने कम दाम में ऐसी क्वालिटी कोचिंग दिल्ली तो क्या पूरे देश में कोई नहीं दे सकता है। क्यों? क्योंकि उसके लिए कोचिंग कोई धंधा नहीं, पवित्र मकसद है... क्यों, क्योंकि उसके लड़के को कोचिंग न मिल पाने के कारण बचपन में ख्वाब की तरह देखे उस कोर्स में दाखिला नहीं मिल पाया था जिसकी वजह से... नहीं, खुदकुशी नहीं की थी उसने... उसका मानसिक संतुलन बिगड़ गया था...।

उसका मजमा खत्म हो जाने के बाद किसी मूर्ख की तरह मैंने उन 'दाताओं' से उसकी बातों को प्रश्नांकित किया तो 'तू कौन कि मैं खामखा' के चौखटे में निरस्त करते हुए वे मुझ पर अर्रा पड़े। आखिर उसी कॉलिज के अंग्रेजी विभाग के नीलकांत गर्ग और जनसंचार के डा. मक्कड़, जैसा उसने बताया उसके संस्थान के अतिथि संकाय में शामिल थे। पंजाब नेशनल बैंक के ऊपर हाल ही में उस नाम का एक बोर्ड उनमें से किसी ने देखा था। सब ऐसे ही है क्या? उसे लेकर मुझे दूसरी शर्मिंदगी उठानी पड़ी थी। तब वह जीत गया था हालाँकि जल्द ही पता चल गया कि वह सब उसकी एक और नई कहानी थी जिसके तंतुओं को वह बारीकी से बुनता था और खास बरसाती झींगुरों की तरह थोड़ी देर का अस्तित्व प्रदान कर वहाँ से कूच कर जाता था - कुछ नया या जिसे कहते हैं अभिनव करने को। ...वक्त की छोड़ी गर्दिशों को चुनौतीपूर्ण ढंग से बुहारता-पकड़ता...।

मुझे अंदाजा नहीं था कि रावल के भीतर ऐसा भी कुछ दिलचस्प भरा पड़ा होगा। आए रोज तो उसके साथ बैठक रहती है। बरसाती मेढकों की तरह हमारे तजुर्बे सही वक्त आते ही कैसे जाग-कूदते हैं। पीने के दौरान ही हमने हल्की सर्विंग के जो क्रिस्पी प्रॉन और सीजर्स सैलड चुपचाप उदरस्थ कर लिए थे उसके बाद कुछ खाने की इच्छा नहीं थी फिर भी डिनर स्वरूप एक रिसोटो मँगा-खाकर अपने को अशालीन होने से बचाया और उठ लिए। गेट से बाहर निकलते ही 'मोका' पर इस पहर कॉफी पीने का रावल का सुझाव मुझे दुरुस्त लगा। उसके नाम में मौजूद 'कॉफी एंड कनवर्सेशंस' बहुत माकूल लगता है। आपने ऑर्डर दिया हो या न दिया हो, खाने-पीने के बाद बिल भी अदा कर दिया हो, कोई आपसे जगह छोड़ने को नहीं कहेगा। इसीलिए कतार रहती है। मगर एक बार अंदर चले गए तो पट्टा आपका। कॉफी के साथ तंबाकू विहीन सुगंधित हुक्के की संगत प्रहलाद कक्कड़ छाप देसी एड-गुरू की करामात लगती है। आज किस्मत अच्छी थी जो थोड़े इंतजार के बाद ही एक खाली कोना मिल गया। हुक्के की पुदीने के स्वाद वाली दो तीन गुड़गुड़ों ने ओलिव में सुनाए उसके किस्से से जोड़ डाला।

'तुम्हारे इस अनुभव को जानकर तो और हैरानी होती है कि चार रोज पहले तुमने उस नामाकूल बीकानेरी की कैसे मदद कर दी। जो हमारे साथ आए रोज होता रहता है उस सबको देखकर क्या बचता है?'

चार रोज पहले का वाकया बहुत अहमियत चाहे न रखता हो मगर उसकी वादा खिलाफी दिन-ब-दिन जायका बिगाड़ती जा रही थी... ये क्या कि कोई भरी दुपहरिया आपको उल्लू बनाकर चला जाए! यही है आदमी-आदमी की आपकी समझ? हर लाल बत्ती पर गाड़ी रुकते ही जरा जरा से भिनकते बदहाल बच्चे और बूढ़ी निर्बल औरतें अनंत आशीषों की झड़ी और मिन्नतों के साथ आपसे रुपए-दो रुपए के रहम की भीख मागती हैं और आप उनकी गुहार को एक उपद्रव या शहर में व्याप्त प्रदूषण मानकर उनकी तरफ देखे बगैर आगे बढ़ जाते हैं। और उधर कोई आपको दिन दहाड़े छलकर, बकरा बनाकर चला जाता है!

लोगों को समझ क्या रखा है इन्होंने**?**

'इसका कोई बड़ा कारण नहीं है। हम लोगों के हिस्से बड़ी चीजें आती भी कहाँ है डियर। दिल्ली युनिवर्सिटी में मिले उस बूढ़े सरदार से भी पहले मेरे साथ एक दुर्घटना हुई थी जिसके भग्नावशेष आज तक नहीं निकले हैं। बताने लायक तो नहीं है मगर जो भी हो, सुनो।

एक प्रतियोगी परीक्षा देने मेरठ गया था। दोपहर दो से पाँच उसका टाइम था। परीक्षा खत्म होने से पहले ही किसी बात को लेकर शहर में दंगा हो गया। हम जैसे ही सेंटर से बाहर निकले, फँस गए। कर्फ्यू लगने की तैयारी थी। उसी अफरातफरी में एक हट्ट-कट्टे वर्दीवाले से मैंने बस अड्डे का सुरक्षित रास्ता पूछा क्योंकि जो ज्ञात रास्ता था वह बंद किया जा चुका था।

'कहाँ जाना है?'

'दिल्ली।'

'दिल्ली में कहाँ?'

'आर के पुरम।'

'आर के पुरम में कहाँ?'

'सेक्टर तीन।'

'चल तेरा काम हो गया।' उसने ऐसे भरोसेमंद लहजे में कहा कि आने वाली अनहोनी का अंदेशा हो ही नहीं सकता था। 'हमारी एक गाड़ी जा रही है उधर।'

संकट तो अभी आया नहीं था मगर फिर भी मैंने राहत महसूस की और उसके साथ हो लिया। दो-तीन गलियाँ लपकते हुए पार करके थोड़ी देर में ही हम एक सुनसान अहाते में घुस गए। वहाँ कोई गाड़ी खड़ी न देखकर मन में कुछ शंका तो हुई मगर लड़कपन में कौन इतना या ऐसा-वैसा सोचता है। वह एक बड़ी तीन मंजिला कोठीनुमा पुरानी इमारत थी जिसकी तल मंजिल के एक कमरे में मुझे चुपके से घुसाकर उसने सिटकनी लगा दी।

'निकाल जो कुछ है तेरे पास।' पता नहीं कहाँ से फनफनाता रामपुरी चाकू वार की मुद्रा में मेरी छाती की तरफ साधते हुए वह गुर्राया। मैं सोच भी नहीं सकता था कि वर्दी में कोई ऐसे भी कर सकता है।

तो यह पुलिस-वुलिस नहीं है।

मेरी घिग्गी बँध आई।

दूसरे कमरे से तभी उसके छोटे-बड़े चार-पाँच साथी मुआइना करती मुद्रा में निकल आए तो मैं सिहर उठा। कौन हैं ये लोग? क्या बिगाड़ा है मैंने इनका? और मेरा कसूर? जैसे सवाल मूझे छूकर जरूर भाग गए थे मगर एक भीगें, कोंचते खौफ ने पूरे वजूद को अवसन्न कर डाला था। अभी झुटपुटा सा ही था मगर मेरे आगे नरक को निगलता लिजलिजा अंधकार तना खड़ा था। जेब के कलम-कागज और छोटे से बटुए को उनके आगे अर्पित करते हुए मैं अजीब तरह से, उँह-आह के रुदन से, कँपकँपाते निरीहता में जुड़े हाथों से भैया-भैया बुदबुदाते हुए बख्शे जाने की भीख माग रहा था।

डेढ़ सौ के करीब की रकम गिनकर मुझ पर उनकी खुन्नस और भी बढ़ गई।

'और कहाँ हैं?' कहते हुए किसी ने मेरे पुट्ठे पर जोरदार किक जड़ी। उसका दसमांश भी मेरी बर्दाश्त बाहर था। न जाने कितने बल खाते हुए सामने दीवार की बंद खिड़की के नीचे जा लिथड़ा। कहाँ गूमट पड़ा, कौन सी नस चटकी, कहाँ से खून बहा इसकी कौन सुध लेता क्योंकि उस चाकू की लंबी तेज धार, आँखों में उतरे खून और उनके चेहरों पर चिपके राक्षसीपन के आगे लग रहा था कि जिंदगी का काम तमाम होने वाला है। पहले एक पल को खुद को मैं किसी गफलत का शिकार हुआ मान रहा था मगर डेढ़ सौ रुपए पर उनकी हताशा के बाद समझ आया कि ये गुंडे-लुटेरे हैं। कुंडल के लिए कान कतर लेने वाले। और कुछ नहीं।

'उट्ठ!' मेरी तरफ चले आते मूँछधारी का कड़क हुक्म मेरे कानों में सीसे की तरह गिरा। मेरा अवचेतन तक तामील करने के लिए घिघिया रहा था। उस बदहवासी में लुढ़ककर जैसे ही मेरा रुदन कुछ बढ़ा किसी ने एक कड़क 'चोप्प' को माँ की गाली के साथ फींचकर उल्टे हाथ का तमाचा जड़ा जो मनहूसियत की रँभाती मेरी बछिया को बेआवाज करने में कारगर था।

साँस न लेने का हुक्म भी वहाँ कबूल होता।

'पैंट उतार' गहरे मतलबपरक लहजे में मुच्छड़ ने इस बार नरम होकर आदेश किया।

'भैयाss... मेरे पास जो कुछ है आप सब ले लो पर मुझे छोड़ दो... प्लीज' मैंने यथा सँभलकर, अनुनय से पिघलकर एक मार्मिक प्रार्थना उनकी मंजूरी को सरकाई।

'वही तो कर रहे हैं चिकने'

मुझे अंदाजा नहीं था कि शब्दों के अलावा मेरे साथ वे कैसी गुंडई करने जा रहे थे।

'क्या... क्या उन्होंने...?

अभी तक तल्लीनता से रावल की कथा सुनते हुए इस बिंदु पर अनजाने ही मेरी चीख निकल गई। एक दूसरे के संग-साथ और बातों की नौकाविहार करते कई पड़ोसी चेहरों ने अलसाई मानसिकता से लगभग सार्वभौमिक निरपेक्ष 'क्या हुआ' में मेरी तरफ रुख किया और वापस अपने में रम गए।

यह भी मुंबई की खूबी है : जब तक जान पर न आन पड़े, किसी अन्य के साथ वास्ता रखना हस्तक्षेप की श्रेणी में शुमारा जाता है।

अपनी चीख पर मैं खुद भी झेंप गया और '...तुम्हारे साथ कुकर्म किया था' के उस अधूरे छूटे प्रश्न को धीमे से पूरा कर गया।

'कह सकते हो। कोशिश तो की ही गई थी। बायलॉजी के हिसाब से न सही, फिजिक्स के हिसाब से तो...।'

'फिर क्या हुआ?' मैंने दुस्वप्न-कथा के अनंतिम पायदान पर कदम धरते हुए हौले से पूछा।

'फिर क्या होना था!'

'मतलब?'

'फिर मेरा दूसरा जनम हुआ।'

'मतलब?'

'मेरा तन-मन लूट-खसोटकर उन्होंने मुझे उस भुतही कोठी से बाहर खदेड़ दिया। मुझे काट भी डालते तो शहर के सूचकांक में कोई फर्क नहीं पड़ता। दंगे के वक्त तो और भी नहीं। एक पिछड़े, बीमार इलाके में जहाँ उद्यमहीनता और खुदगर्जी गुनाह के चाक की मिट्टी गढ़ते रहते हैं वहाँ किसी की मदद करना स्वभाव में शामिल नहीं होता है'।

'तुम्हारे साथ क्या हुआ?'

पठार के कगार से साबुत या जीवित बच जाने की दास्तानें मुझे चहकाती हैं।

'सब कुछ तो नहीं मगर हाँ, थोड़ा-बहुत...।

अहाते के बाहर मुझे पटककर वे फिर कहीं चले गए थे। मौका रहते शायद कहीं और दूसरे शिकार करने-तलाशने। दंगा कौन सा रोज-रोज होता है। या पता नहीं और कुछ करने। अँधेरा घिर आया था। खिड़ंजे की टूटी सड़क पर किसी की आवाजाही नहीं दिख रही थी। जगह-जगह चकत्तों में उगी सरकंडों की बढ़वार अजीब तरह से वीभत्स लग रही थी। खूब साँप-बिच्छू हो सकते थे। मैं वहाँ से भागना चाह रहा था मगर समझ नहीं आ रहा था किधर जाऊँ। हालत पस्त थी और किसी रास्ते की खबर नहीं थी। मेरी त्रासदी से बेखबर घरवाले पता नहीं क्या सोच रहे होंगे, क्या कर रहे होंगे। और कुछ न सही तो फोन करके दंगे के कारण अपने यहाँ फँस जाने की सूचना तो उन्हें दे देता हूँ। हो सकता है यहाँ रहने वाले किसी दूर के दोस्त या परिचित की जानकारी हाथ लग जाए। यह सोचते ही मेरी रुलाई छूटने को हो आई क्योंकि मैं इस समय बिल्कुल फप्फस था। फोन करने को भी तो कुछ पैसे चाहिए और वह होगा भी कहाँ से।

कुछ देर पहले परीक्षा केंद के भीतर मैं भारतीय संविधान और उसकी लोकशाही पर सगर्वित टिप्पणी लिख रहा था और अब लग रहा था कि कैसा नारकीय समाज है हमारा। तब तक मैंने फ्री-कोर्प्स, एसएस और नाजियों के कारनामें नहीं पढ़े थे। क्या इन दरिंदों को इनके किए की सजा मिलेगी? जो उन्होंने मेरे साथ किया वह पहले भी करते रहे होंगे और आगे भी करेंगे। क्या कोई इन्हें ठिकाने नहीं लगा सकता? पुलिस को तो ये मिलाकर रखते होंगे। कितनी हत्याओं के कातिलों का इसीलिए पता तक नहीं चल पाता है। अपने साथियों को थोड़ी मर्दानगी दिखाने के जोम में उस धधकते रामपुरिया से कोई मेरा गला रेत देता तो कोई क्या कर लेता। दंगा तो फुटकर अपराधों पर वैसे भी मिट्टी डाल देता है। भीतर से एक क्रूर संकल्प जगा कि पुलिस में भर्ती होकर कभी इनका हिसाब सीधा करुँगा। पुलिस न सही तो भाड़े के इनके जैसों को ही लगाऊँगा यह तारीख और जगह तो जिंदगी भर साथ रहने वाली है।

प्रतिशोध की उस दयनीय आग को सँभाले, किसी तरह अपने को बचाते-लड़खड़ाते हुए मैं सुनसान गली के दूसरे छोर पर आ गया। उधर कुछ छुटपुट दुकानें थीं जो कर्फ्यू के कारण बंद थीं। कहीं से आकर दो-एक गबरु कुत्ते मुझे फाड़ देते तो मुझे सचमुच कुत्ते की मौत मिलती। मैंने इधर-उधर मकानों की नामपट्टियाँ देखनी शुरु कीं - कोई तो मेरी जाति या क्षेत्र का होगा? उस रुप में ज्यादातर अनाम ही थे। नामपट्टी वाले जिन दरवाजों को खटखटाया उसका कोई नतीजा नहीं निकला। मेरी डरी हुई आत्मा किसी तिनके का सहारा ढूँढ़ रही थी जो लगातार छकाए जा रहा था। प्यास से मेरा गला तक पपड़ा गया था। लग रहा था मेरा अंत निकट है। किसी भी पल कोई मुझे पीछे से वार कर या सामने से आकर चीरकर रख देगा। कुछ देर बाद मोटर साइकिल पर गश्त

लगाते पुलिसवालों को देखकर मेरी कुछ आस बँधी। उनकी मोटर साइकिल मेरे पास आकर रुकी। इंजन बंद किए बिना उन्होंने मुझसे चार-छ्ह सवाल पूछे और मेरी हालत में कोई रुचि दिखाए बगैर मुझे वहाँ से फौरन दफा हो जाने की हिदायत देकर चले गए। दो-तीन गली दूर शायद दंगा अपने रंग में उतर रहा था। मेरा मन हुआ मैं उधर ही चला जाऊँ। गुमनाम मरने से तो अच्छा रहेगा। सच, उस दर्द, उसकी परतों उसके कसैलेपन का बयान करना नामुमकिन है। भाषा के तमाम औजारों के बावजूद वह लाबयान है। ऐसी स्थिति में कभी फँसे लोग बाद में जब बतलाते हैं तो उसका बहुत कुछ समतल कर बैठते हैं क्योंकि स्मृति और विस्मृति की अवचेतन में चलती मुठभेड़ के चलते ईमानदारी तबीयत से हताहत होती है। जैसे प्रसव के समय क्रमश: बढ़ते संकुचनों में दर्द की इंतहा झेल जाने के अहसास के बावजूद हर माँ के भीतर, बाद में उस दर्द की एक धुँधली-सी छवि, एक भूली-सी याद भर शेष रह जाती है। वैसे ही। कोई नीम जिबह किया गया मेमना था मैं तब। एक जगह ठोकर खाकर मेरा पैर नाली में जा गिरा। वहीं पर किसी वाहन के नीचे आकर मरे पिल्ले का पिचका हुआ धड़ था। इस जगह बैठकर उस कीचड़ का क्या जिक्र करूँ, बस यह समझ लो कि वहाँ कोई सीवर लाइन नहीं रही होगी।

किसी भी सूरत वहाँ से निकलने को छटपटाने हुए मैं यह भी सोचे जा रहा था कि इतनी जरा सी देर में जीवन कैसी करवटें खाने लग रहा है। मोबाइल का जमाना होता तो कितनी राहत हो जाती।

वहाँ से हटकर मैं गली के मोड़ पर जाती दूसरी सड़क पर आ गया जहाँ अपने अपने महफूज ठिए-ठिकानों की तरफ भागते लोगों की भागमभाग थी। कितने खुशनसीब हैं ये लोग! दस-बीस मिनट या आधे घंटे में ये सब अपने घरों में होंगे। दिन भर की गई मेहनत-मशक्कत का पसीना सुखाते, रास्ते में दंगे की देखी-सही स्थिति का मजे से तब्सरा करते, छुकी मिर्ची या करेले के टुकड़ों के साथ दाल रोटी का स्वाद सहेजते, ताजा हालात की टीवी या रेडियो (समाचारों के लिए उन दिनों जिसका कान पहले उमेठा जाता था) से जानकारी लेकर डकार मारते। लेकिन ऊपर-ऊपर से भले या सामान्य दिखते ये लोग कितने भावहीन, पाषाणहृदय, खुदगर्ज और क्रूर थे, यह मैंने तभी जाना। मैं भाईसाहब, भैया, अंकल, भैयाजी, ओ अंकलजी और पता नहीं किन किन लफ्जों के सहारे, रुँधे गले से उनसे एक जरा से सहारे की भीख माँग रहा था : आज की रात कोई मुझे बचा ले, सहारा दे दे, मुझे किसी का खाने को नहीं चाहिए (याद आते ही मेरे भीतर भूख का भभूका दौड़ गया), मैं जमीन पर, कहीं भी लेट जाऊँगा... मगर सिर के ऊपर किसी इंसान छत की सुरक्षा नसीब हो जाए। क्या वह बहुत बड़ी

चीज थी? मगर एक आदमी को भी तो मेरी तरफ देखने मेरा हाल सुनने की फुर्सत नहीं थी। क्या उनमें से किसी का मेरी उम्र का बच्चा नहीं होगा, ऐसी हालत में इनमें कभी कोई नहीं फँसा होगा? ठीक है, दंगे के हालात हैं और दंगा हर चीज को एक निर्लज्ज विवेकहीनता में बदल देता है मगर इधर तो ऐसा-वैसा अभी चल भी नहीं रहा है।

ऐसे ही देर तक गिड़गिड़ाने-सोचने के बाद मैं वहीं हाँफकर पसर गया। क्रमहीनता में भागते लोगों को उस पस्त हालत में कहीं महसूस करता हुआ। भूख और अशक्ति के कारण निचुड़ा पड़ा था। हो सकता है कोई दौड़ता-भागता वाहन अनजाने ही मुझे पंगु करके चला जाए। कोई घात लगाता दंगाई ही अपने हत्थे चढ़ा दे?

लोगों के चलने फिरने की आवाजें कम हो चुकी थीं जब एक साइकिल धारी ने किसी देवदूत की तरह थोड़ी फटकार के साथ मुझे उस नाउम्मीदी से चेताया। नामादि पूछा और साथ चल पड़ने का बिरादना 'चलो' उचारा। तो क्या मैं बच जाऊँगा?

वह अधेड़ कहीं पान-बीड़ी का खोखा चलाता था। तीन बजे के करीब उस इलाके में दंगा भड़का था जिसमें उसे धर लिया गया था। अभी वहीं से छूटकर आ रहा था। उसी ने बताया।

क्या करूँ, चल दूँ इसके साथ या कहीं ये भी उस वर्दीवाले की तरह...। है न अजीब बात। कुछ देर पहले तक मैं लोगों से एक सहारे के लिए गिड़गिड़ा रहा था और अब कोई मुझे इसी बाबत समझा रहा है!

तब मेरी चेतना नहीं, जिंदगी लौटी थी।

अन्यथा बच भी जाता तो कितना बचा होता?

खैर, अब उसका ज्यादा जिक्र क्या करना। इतना समझ लो कि वह एक बेहद मामूली आदमी था। मगर एक रीयल ह्यूमन डायमंड। मेरठ के बाहरी इलाके में एक कोठरी नुमा कमरे के साथ पतरे के बरामदे जितनी संपदा का मालिक।

बाकी रात वहाँ इतने सकून से कटी कि सुबह तरोताजा महसूस करता उठा। साइकिल पर ही उसने स्टेशन पहुँचाया और दिल्ली तक का टिकट पकड़ाया। दुनियादार हो गया हूँ मगर उसका कर्ज आज भी महसूस करता हूँ। कभी टच ही नहीं रहा उससे।

इससे पहले कि मामला विगलित होता मैंने रावल से पूछा : तो क्या तुमने उस बीकानेरी जैसे औरों की भी मदद की है?

'ऑफ कोर्स, कइयों की।'

'क्या नतीजा रहा है?

'कुछ भी नहीं।'

'तुमने कभी बताया नहीं।'

'अरे, इसमें बताने जैसा क्या था।'

'अजीब आदमी हो यार।'

'तुम जो भी मानो।'

'यार तुम्हारा बीकानेरी तो गड़बड़ निकला।' दो दिन बाद छूटते ही अपनी बात को रहस्यात्मक में पिरोते हुए रावल मोबाइल पर शुरु हो गया।

बात की चहक उसके कहे से अलग थी।

'क्या?' मैं फोन सँभालते ही चौंका।

'यार वे लोग वैसे नहीं थे।'

'क्या?' इस बार मेरा आश्चर्य दो गुना हो गया।

'यस' बात में आस्था की सिद्धि थी।

मैं बात के विस्मय से अपने मन का सामंजस्य बिठाता हुआ कहीं गड़बड़ महसूस किए जा रहा था।

https://www.hindiadda.com/ek-samay-ki-baat/